राजस्थानी चित्रकला शैली 2

12148CH02

राजस्थानी चित्रकला शैली का तात्पर्य चित्रकला की उस शैली से है जो मुख्य रूप से राजस्थान एवं वर्तमान समय के मध्य प्रदेश के कुछ शाही राज्यों एवं ठिकानों में फैली थीं, जैसे— मेवाड़, बूँदी, कोटा, जयपुर, बीकानेर, किशनगढ़, जोधपुर (मारवाड़), मालवा, सिरोही व ऐसी अन्य प्रमुख रियासतें। सोलहवीं शताब्दी के मध्य से उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ के मध्य इस शैली का विकास हुआ।

कलाविद् आनंद कुमारस्वामी ने 1916 में, इसे 'राजपूत चित्रकला' का नाम दिया, क्योंकि इन राज्यों के अधिकांश शासक एवं संरक्षक राजपूत थे। उन्होंने यह नामकरण इन चित्रों को उस समय की मुगल चित्रकला शैली से अलग दिखाने के लिए किया। इसलिए मालवा शैली, जिसमें मध्य भारत की रियासतें और पहाड़ी शैली और भारत के उत्तर-पश्चिम हिमालय के पहाड़ी क्षेत्र सम्मलित हैं, को भी उन्होंने राजपूत शैली के ही अंतर्गत रखा। कुमारस्वामी के अनुसार, यह नामकरण चित्रण की स्वदेशी परंपरा का द्योतक है जो यहाँ मुगलों के आगमन के पूर्व से चली आ रही थी। इसके बाद भारतीय चित्रकला के विषय में काफी शोध हुए और समय के साथ राजपूत शैली शब्द का प्रयोग समाप्त हो गया। उसके स्थान पर इसके लिए अब राजस्थानी शैली और पहाड़ी शैली शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

यद्यपि इन शैलियों में भौगोलिक दूरी बहुत कम है, लेकिन इनकी उत्पत्ति, विकास व शैली में, सशक्त रेखांकन, रंगों की वरीयता (चमकदार और सौम्य) तथा संयोजन के तत्वों, जैसे— वास्तु, मानवाकृतियाँ, प्रकृति, अंकन की तकनीक, प्रकृतिवाद के लिए आकर्षण और वर्णन विधि आदि में पर्याप्त अंतर परिलक्षित होता है और इन्हीं विशेषताओं से वे एक-दूसरे से अलग अपनी पहचान भी बनाती हैं।

चित्रों का निर्माण सामान्यतया वसली पर किया जाता था। वसली बनाने की अपनी अलग विशिष्ट तकनीक है, जिसमें कागज़ के पतले पन्नों को गोंद से चिपकाकर आवश्यक मोटाई की वसली तैयार की जाती थी। इस प्रकार तैयार वसली पर काले या भूरे रंग से रेखांकन किया जाता था। तत्पश्चात् उसमें आवश्यक रंग भरा जाता था। रंग मुख्य रूप से प्रकृति से प्राप्त खनिज पदार्थों व बहुमूल्य धातुओं, जैसे— सोना व चाँदी से बनाए जाते थे, जिन्हें चिपकाने के लिए गोंद में मिलाया जाता था। ऊँट या गिलहरी के बालों का प्रयोग ब्रुश बनाने के लिए किया जाता था। चित्रण कार्य पूर्ण होने पर अगेट पत्थर से उसे

© NCERT not to be republished

रगड़ा (घुटाई करना) जाता था जिससे चित्र की ऊपरी सतह समतल, चमकदार व ओजपूर्ण हो जाती थी।

चित्रकला एक सामूहिक कार्य होता था जिसका एक कुशल दक्ष कलाकार द्वारा नेतृत्व किया जाता था, जो आरंभिक रेखांकन का कार्य करता था, तत्पश्चात् रंग, छवि चित्रण, वास्तु, भू-दृश्य (प्रकृति) और पशु-पक्षी बनाने में निपुण उसके शिष्य एवं दक्ष कलाकार अपना-अपना कार्य पूरा करते थे। अंत में प्रधान कलाकार चित्र को अंतिम रूप देता था। सुलेखक निर्धारित स्थान पर संबंधित श्लोक या पद लिखता था।

चित्रकला के विषय— एक समीक्षा

सोलहवीं शताब्दी तक राम और कृष्ण से संबंधित वैष्णव संप्रदाय भक्ति आंदोलन के रूप में पश्चिम, उत्तर व मध्य भारत में लोकप्रिय हो चुका था, आगे चलकर यह पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में फैल गया, जिसमें कृष्ण विशेष लोकप्रिय हुए। उनकी उपासना केवल ईश्वर के रूप में ही नहीं, बल्कि एक आदर्श प्रेमी के रूप में भी की जाने लगी। प्रेम की धारणा को धार्मिक विषय के रूप में पोषित किया जाता था, जहाँ भावना और रहस्यवाद का एक मनोहारी समन्वय प्राप्त होता था। कृष्ण को

वन में कृष्ण और गोपियाँ, गीत गोविंद, मेवाड़, 1550, छत्रपति शिवाजी महाराज वास्तु संग्रहालय, मुंबई

CERT Published

सृष्टिकर्ता माना गया जिनसे सारी सृष्टि की रचना हुई और राधा, मानवीय आत्मा की प्रतीक, अपने को उनमें समाहित होने को उद्दत हैं। गीत गोविंद चित्रकला में, आत्मा की परमात्मा के प्रति भक्ति, राधा द्वारा अपने प्रिय कृष्ण के आत्मत्याग द्वारा चित्रित किया गया है।

गीत गोविंद की रचना जयदेव द्वारा बारहवीं शताब्दी में की गई। ऐसा माना जाता है कि वे बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन के दरबारी कवि थे। *गीत गोविंद* ग्वालों के गीत संस्कृत का काव्य है, जिसमें शृंगार रस की प्रधानता है। इसमें राधा-कृष्ण के आध्यात्मिक प्रेम को भौतिक रूप में दिखाया गया है। भानुदत्त ने चौदहवीं शताब्दी में कलाकारों के एक और अन्य प्रिय संस्कृत ग्रंथ *रसमंजरी* की रचना की। भानुदत्त बिहार के रहने वाले मैथिल ब्राह्मण थे। *रसमंजरी* का अर्थ है— आनंद का गुलदस्ता। इस संस्कृत ग्रंथ में रसों के वर्णन के साथ-साथ नायक (पुरुष) एवं नायिकाओं (स्त्री) के भेद का भी विवरण मिलता है, जैसे— उम्र के अनुसार— बाल, तरुण और प्रौढ़; आंगिक विशेषताओं के अनुसार— पद्‌मिनी, चित्रिणी, शंखिनी, हस्तिनी आदि; भावगत विशेषताओं के अनुसार— खंडित, वासकसज्जा, अभिसारिका व उत्का आदि। यद्यपि इस ग्रंथ में कृष्ण का उल्लेख नहीं हुआ है, फिर भी चित्रकारों ने उन्हें प्रतिनिधि (आदर्श) प्रेमी के रूप में चित्रित किया है।

रसिकप्रिया का अर्थ है— रसिक या पारखी को आनंदित करने वाला। यह जटिल काव्यगत विवेचनों से परिपूर्ण है और इसकी रचना अभिजात्य दरबारियों के सौंदर्यबोध के उद्दीपन के लिए की गई। ब्रजभाषा में रचित *रसिकप्रिया* के रचनाकार केशवदास थे। वह 1591 में ओरछा के राजा मधुकर शाह के दरबारी कवि थे। *रसिकप्रिया* में अनेक प्रेरक अवस्थाओं का उल्लेख हुआ है, जैसे— प्रेम, मिलन, वियोग, ईर्ष्या, विवाद और इसके परिणामस्वरूप प्रेमी-प्रेमिकाओं में होने वाली अनबन, गुस्सा जैसी अवस्थाओं की अभिव्यक्ति राधा-कृष्ण के माध्यम से दर्शाई गई है।

कविप्रिया, केशवदास द्वारा राय परबीन के सम्मान में रचित एक अन्य काव्य है। राय परबीन ओरछा की एक प्रसिद्ध गणिका थी। यह एक प्रेमकथा है, लेकिन इसके दसवें अध्याय में 'बारहमासा' नामक प्रकरण है, जिसमें साल के बारह महीनों जलवायु या मौसम का सटीक वर्णन हुआ है। अलग-अलग महीनों के मौसम में लोगों के दैनिक जीवन का वर्णन करते हुए उसमें आने वाले त्यौहारों का भी उल्लेख किया गया है। केशवदास ने यह भी उल्लेख किया है कि कैसे नायिका नायक को राज़ी करती है कि वह उसे छोड़कर अपने गंतव्य की ओर अग्रसर ना हो।

बिहारी सतसई, के रचनाकार बिहारीलाल हैं; इसमें सात सौ (सतसई) पद्य हैं, जिनकी रचना सूक्ति एवं नैतिक हाज़िरजवाबी के रूप में की गई है। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने इसकी रचना 1667 ई. के आसपास की, जब वे जयपुर के राजदरबार

© NCERT not to be republished

में मिर्ज़ा राजा जय सिंह के लिए कार्य कर रहे थे, क्योंकि *सतसई* की कई सूक्तियों में संरक्षक का नाम आया है। *बिहारी सतसई* का चित्रण मेवाड़ में अधिक हुआ है, साथ ही साथ पहाड़ी शैली में भी इसका चित्रण हुआ है।

रागमाला चित्रकला रागों और रागिनियों की चित्रात्मक अभिव्यक्ति है।

संगीतज्ञों एवं कवियों द्वारा परंपरागत रूप में रागों को प्रेम एवं भक्ति के प्रसंगों में, दैवीय या मानवीय रूप में देखा गया। प्रत्येक राग एक विशेष अवस्था, दिन के प्रहर (समय) और ऋतु से जोड़ा गया है। रागमाला चित्रकला में सामान्यतया 36 या 42 चित्रित पृष्ठ हैं। ये एक परिवार के रूप में दिखाए गए हैं। प्रत्येक परिवार का मुखिया एक पुरुष राग होता है और स्त्री के रूप में छह रागिनियाँ होती हैं। छह मुख्य राग— भैरव, मालकोस, हिंडोल, दीपक, मेघ और श्री हैं।

चारण (किंवदंती) और अन्य प्रेमाख्यान, जैसे— *ढोलामारू*, *सोनी-महिवाल*, *मृगावत*, *चौरपंचाशिका* और *लौरचंदा* जैसे साहित्य भी कलाकारों के प्रिय विषय थे। *रामायण*, *भागवतपुराण*, *महाभारत*, *देवी महात्म्य* और इस प्रकार के अन्य साहित्य भी सभी शैली के कलाकारों के पसंदीदा विषय थे।

इनके अतिरिक्त, दरबार के दृश्य एवं ऐतिहासिक घटनाओं पर भी प्रचुर संख्या में चित्र बनाए गए हैं, जिनमें— शिकार, युद्ध एवं विजय, उत्सव, वनमोज, नृत्य, संगीत, त्यौहार, वैवाहिक उत्सव, राजाओं के छवि चित्रण, दरबारी एवं परिवार के सदस्यगण, शहरी जीवन एवं पशु-पक्षियों आदि के चित्र हैं।

चौरपंचाशिका, मेवाड़, 1500, एन. सी. मेहता संग्रह, अहमदाबाद, गुजरात

मालवा चित्रकला शैली

मालवा शैली सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में फली-फूली और यह शैली हिंदू राजपूत दरबार का प्रतिनिधित्व करती है। इसकी द्वि-आयामी सपाट एवं सरल भाषा, जैन पांडुलिपियों से *चौरपंचाशिका* पांडुलिपि चित्रों की शैलीगत विकास की पूर्णता की परिणति है।

राग मेघा,
माधो दास, मालवा, 1680,
राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

राजस्थानी शैली की उत्पत्ति एवं विकास एक निश्चित प्रादेशिक भू-भाग और उनके शासकों के संरक्षण में हुई, वहीं इसके विपरीत मालवा शैली किसी एक निश्चित क्षेत्र में उत्पन्न नहीं हुई और यह मध्य भारत के बड़े भू-भाग में फैली। वहाँ यह छिट-पुट रूप में मांडू, नुसरतगढ़ और नरस्यंग सहर में व्यक्त हुई। कुछ प्रारंभिक तिथियुक्त समूह में *अमरू शतक* को काव्यात्मक रूप से चित्रित किया जाता है, जिसका समय 1652 ई. है। माधो दास द्वारा 1680 ई. में नरस्यंग शहर में राग मेघा चित्रकला को चित्रित किया गया। एक बड़ी संख्या में मालवा शैली के चित्र दतिया महल के संग्रह से प्राप्त हुए हैं। अत: संकलित चित्र बुंदेलखंड को चित्रकला का केंद्र होने का समर्थन करते हैं। लेकिन दतिया महल के भित्ति चित्रों में मुगल प्रभाव चुनौती देते हैं। जो कागज़ पर बने चित्रों के एकदम विपरीत हैं जो शैलीगत रूप से स्वदेशी एवं सादगीपूर्ण हैं। इस शैली में राजकीय संरक्षकों एवं छवि चित्रण का पूर्ण अभाव इस अवधारणा का प्रमाण है कि दतिया के राजाओं ने इन चित्रों को घुमंतु कलाकारों से खरीदा होगा, जिन्होंने जन सामान्य में प्रचिलित विषयों— *रामायण*, *भागवतपुराण*, *अमरू शतक*, *रसिकप्रिया*, *रागमाला* और *बारहमासा* आदि पर चित्र बनाए होंगे।

सोलहवीं शताब्दी में दिल्ली, आगरा, फतेहपुर सिकरी व लाहौर के दरबार का मुगल शैली पर प्रभाव बढ़ा। प्रांतीय मुगल शैली देश के अनेक भागों में काफी समृद्ध अवस्था में थी। ये मुगल शासन के अंतर्गत तो आते थे, लेकिन शासन कार्य मुगल सम्राटों द्वारा नियुक्त शक्तिशाली एवं संपन्न अधिकारियों द्वारा संचालित होता था। ऐसे स्थानों पर मुगल शैली और विशिष्ट स्थानीय तत्वों से युक्त एक अलग चित्रकला शैली प्रचलित हुई। दक्कन शैली अहमदनगर, बीजापुर, गोलकोंडा और हैदराबाद जैसे केंद्रों में विकसित हुई। इसके बाद सत्रहवीं एवं अठारहवीं शताब्दी में पहाड़ी शैली प्रकाश में आई।

© NCERT not to be republished

मेवाड़ चित्रकला शैली

मेवाड़ को राजस्थानी चित्रकला का प्रारंभिक महत्वपूर्ण केंद्र माना जाता है, जहाँ से चित्रकला की एक सतत शैलीगत परंपरा देखने को मिलती है। सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व से स्पष्ट व स्वदेशी शैली करण सिंह के मुगल दरबार से संपर्क के कारण अनुवर्ती परिष्कृत एवं उत्कृष्ट शैली के रूप में सामने आई। मुगलों के साथ चले लंबे युद्ध के कारण मेवाड़ शैली के प्रारंभिक चित्र नष्ट हो गए।

मेवाड़ शैली की उत्पत्ति सामान्यतया 1605 ई. में निसारदीन द्वारा चुनार में चित्रित रागमाला चित्रों से मानी जाती है। इन चित्रों के अंतिम पृष्ठ पर दिए विवरण द्वारा उक्त महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। इससे इसके दृश्यगत सौंदर्य का पता चलता है। इसकी सत्रहवीं शताब्दी चित्रकला शैली से काफी समानता है जिसे हम चित्रों के प्रत्यक्ष उपागम, सरल संयोजन, छिट-पुट आलंकारिक विवरण और चटक रंगों के रूप में देख सकते हैं।

राजा जगत सिंह (1928–52) के शासन काल में चित्रों में परिष्कार आया। यह परिष्कार प्रतिभा संपन्न कलाकारों, साहिबदीन और मनोहर के कारण आया, जिन्होंने चित्रकला को जीवंतता प्रदान की और मेवाड़ी चित्रकला की परिभाषा गढ़ी। साहिबदीन ने *रागमाला* (1628), *रसिकप्रिया* व *भागवतपुराण* (1648) और *रामायण के युद्धकांड* (1652) का चित्रण किया। इसके एक पृष्ठ का विवरण

रामायण का युद्धकांड, साहिबदीन, मेवाड़, 1652, इंडिया ऑफ़िस लाइब्रेरी, लंदन

मेवाड़ के महाराणा जगत सिंह द्वितीय का शिकार,1744, मेट्रोपॉलिटन म्यूज़ियम ऑफ़ आर्ट, न्यूयॉर्क

यहाँ दिया गया है। मनोहर का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है— *रामायण का बालकांड* (1649)। जगन्नाथ एक अन्य विशिष्ट प्रतिभाशाली कलाकार थे, जिन्होंने 1719 ई. में *बिहारी सतसई* नामक चित्रावली चित्रित की जो मेवाड़ चित्रकला शैली के लिए एक अमूल्य योगदान है। अन्य ग्रंथ, जैसे— *हरिवंश*, *सूरसागर* आदि भी सत्रहवीं शताब्दी की अंतिम तिमाही में सचित्र तैयार कराए गए।

विलक्षण एवं दक्ष चित्रकार साहिबदीन द्वारा चित्रित *रामायण* युद्धकांड का एक अध्याय है। यह सामान्यतया 1652 ई. तक जगत सिंह रामायण के नाम से जानी जाती रही। इस चित्र में साहिबदीन ने एक नवीन चित्रमय युक्ति संयोजन तिर्यक रेखीय परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत किया है, जिसका प्रयोग उन्होंने युद्ध की विभीषिका दिखाने के लिए किया। अनेक वर्णनात्मक तकनीकों का प्रयोग करते हुए कलाकार ने कभी एक से अधिक कथाओं को एक ही पृष्ठ पर एक चित्र के रूप में या एक कथा को अलग-अलग पृष्ठों पर अंकित किया। इस चित्र में युद्ध के समय प्रयुक्त इंद्रजीत के मायावी युद्ध कौशल एवं जादुई हथियारों को चित्रित किया गया है।

अठाहरवीं शताब्दी में चित्रकला का विषय साहित्य से दरबारी क्रियाकलापों एवं शाही मनोरंजन की ओर क्रमशः स्थानांतरित हो गया। मेवाड़ के कलाकारों ने सामान्यतया चटक रंगों का प्रयोग किया है, जिसमें लाल एवं पीले रंगों की प्रधानता है।

सत्रहवीं शताब्दी के अंत में नाथद्वारा जो उदयपुर के समीप है और वैष्णव धर्म का गढ़ था, चित्रशाला के रूप में परिवर्तित हो गया। विभिन्न त्यौहारों के अवसरों पर भगवान श्रीनाथ जी के बड़े-बड़े चित्र, कपड़े पर चित्रित हुए जिन्हें पिछवाई कहा जाता था।

अठाहरवीं शताब्दी में मेवाड़ चित्रकला का स्वरूप धर्मनिरपेक्ष एवं दरबारी होने लगा। अब न केवल छवि चित्रण में चित्रकला का अतिशय उदय हुआ, बल्कि बृहदाकार एवं आकर्षक दरबारी दृश्यों, शिकार के अभियान, उत्सव, अंत:पुर के दृश्य, खेल जैसे विषय विशेष लोकप्रिय हुए।

एक पृष्ठ महाराजा जगत सिंह द्वितीय (1734–52) को चित्रित करता है, जिसमें वे बाज़ का शिकार करने के लिए जाते हुए देश का भ्रमण कर रहे हैं। परिदृश्य का अंकन तिर्यक रूप में हुआ है जिसमें क्षितिज या पीछे का भाग तिर्यक रूप में ऊपर उठता हुआ संयोजित है। परिणामस्वरूप अग्रभाग से हमें अनंत परिदृश्य दिखलाई पड़ता है। दृश्य की प्रासंगिकता घटनाक्रम की जटिलता में निहित है जिसका उद्देश्य घटना को विस्तृत रूप में दिखाना है।

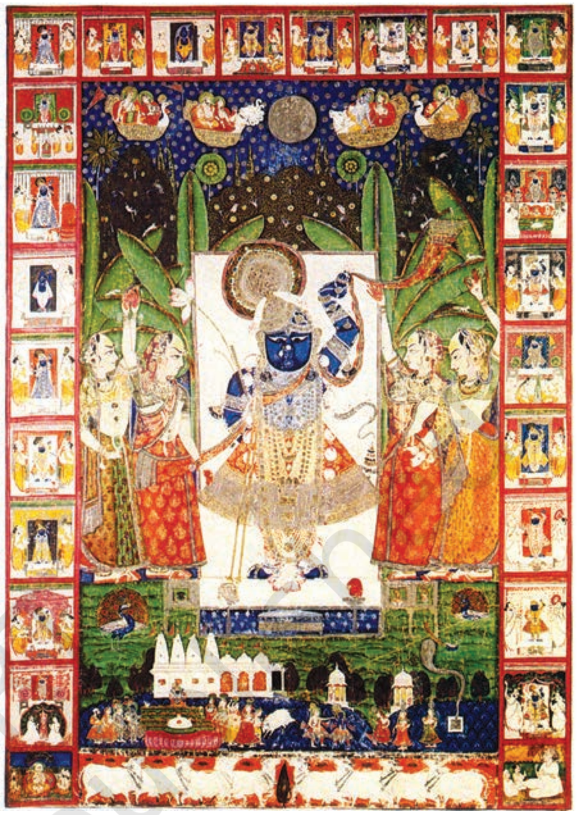

श्रीनाथजी के रूप में कृष्ण शरद पूर्णिमा का त्यौहार मनाते हुए, नाथद्वारा, 1800, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

बूँदी चित्रकला शैली

बूँदी में सत्रहवीं शताब्दी में एक बहुसर्जनात्मक एवं विशिष्ट चित्रकला शैली का विकास हुआ जो अपनी उत्तम रंग योजना और उत्कृष्ट औपचारिक अभिकल्प के लिए उल्लेखनीय है।

बूँदी रागमाला (1591) को इस शैली की आरंभिक और विकासशील चित्रकला माना जाता है। इसका चित्रण चुनार में हाड़ा राजपूत शासक भोज सिंह (1585–1607) के शासन काल में हुआ।

बूँदी शैली का विकास विशेष रूप से यहाँ के दो शासकों के संरक्षण में हुआ। राव छत्रर साल (1631–59) जिन्हें मुगल शासक शाहजहाँ ने दिल्ली का वज़ीर नियुक्त किया था और इन्होंने दक्कन विजय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। दूसरे उनके पुत्र राव भाओ सिंह (1659–82) जो एक उत्साही और भोगालिप्त संरक्षक थे। इनके अनेक छवि चित्र बनाए गए, साथ ही इनके अनेक तिथियुक्त चित्र भी मिलते हैं। इनके उत्तराधिकारी राजा अनिरूद्ध सिंह (1682–1702) के समय में भी इस शैली में रचनात्मक विकास हुआ। बुध सिंह जिनकी दाढ़ी-मूँछ युक्त छवि कई चित्रों में दिखाई देती है, उन्होंने भी इसके विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान

दिया। अनेक राजनैतिक विवादों और चार बार पदच्युत होने के बावजूद चित्रकला के विकास में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है।

राजा बुध सिंह के पुत्र उमेद सिंह (1749–71) के लंबे शासन काल में चित्रण कार्य कुछ समय के लिए अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था तथापि उस समय के चित्रों में सूक्ष्म विवरण दिखाने की प्रवृत्ति में काफी निखार व परिष्कार आ गया था। अठारहवीं शताब्दी में बूँदी चित्रकला में कुछ दक्कनी सौंदर्यगत तत्व दिखाई देते हैं, जैसे— चटक व सजीव रंगों के प्रति प्रेम।

उमेद सिंह के उत्तराधिकारी बिशेन सिंह (1771–1821) ने बूँदी पर 48 वर्षों तक शासन किया। वे एक महान कला पारखी थे। उन्हें शिकार का बहुत शौक था और उन्हें अकसर जंगली पशुओं का शिकार और उन पर विजय प्राप्त करते हुए चित्रित किया गया है। उनके उत्तराधिकारी राम सिंह (1821–89) के समय में बूँदी महल को भित्ति चित्रों से अलंकृत किया गया था, जिनमें दरबारी जुलूस, शिकार के दृश्य और कृष्ण से संबंधित कथाओं का विशेष रूप से चित्रण हुआ है। राजमहल में अंकित भित्ति चित्र बूँदी चित्रकला के अंतिम चरण के सुंदरतम उदाहरण हैं।

दीपक राग, चुनार रागमाला, बूँदी, 1519, भारत कला भवन, वाराणसी

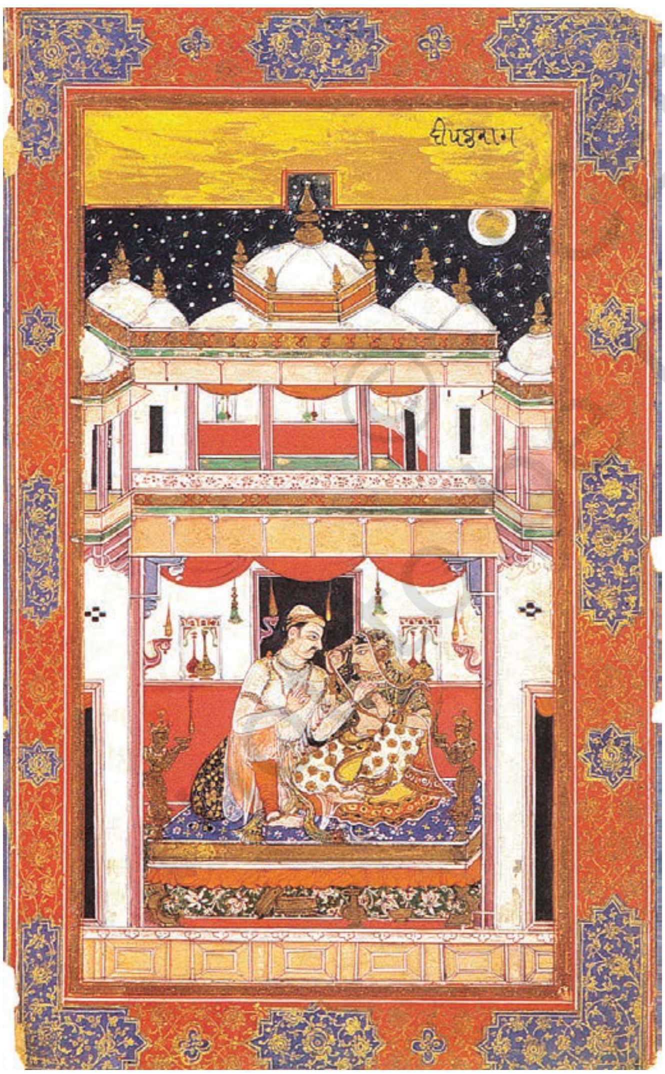

बूँदी और कोटा चित्रकला की एक प्रमुख विशेषता है— सघन वनस्पतियों; सुरम्य भू-दृश्य के साथ विविध पेड़-पौधों, जंगली जीवन, पशु-पक्षियों, पहाड़ियों व झरनों का मनोहारी चित्रण। इनके साथ-साथ जीवंत घुड़सवारों और हाथियों का बूँदी और कोटा, दोनों शैलियों में अद्वितीय चित्रण हुआ है। बूँदी कलाकारों के स्त्री सौंदर्य के स्वयं के प्रतिमान थे, जैसे— छोटी ठिगनी कद-काठी, गोल मुखाकृति, पीछे की ओर ढलुआ माथा, तीक्ष्ण नाक, पतली भूरेखा और पतली कमर आदि।

बूँदी शैली के प्रारंभिक चरण में चित्रित रागमाला में फारसी में एक लेख है, जिसके अनुसार इसका चित्रण समय 1591 ई. है, चित्रकारों का नाम शेख हसन, शेख अली और शेख हातिम है जो स्वयं को मुगल दरबार के प्रसिद्ध चित्रकार मीर सैय्यद अली और ख्वाजा अब्दुस्मद का शिष्य बताते हैं। वे चुनार, जो बनारस के पास स्थित है, उसे चित्रकला के उद्भव का स्थान बताते हैं। यहाँ राव मौज सिंह और उनके पिता राव सुरजन सिंह ने एक महल का अनुरक्षण किया।

वर्तमान में, *चुनार रागमाला* चित्रों के कुछ ही पृष्ठ उपलब्ध हैं, जिसमें खंभावती, बिलावल, मालश्री, भैरवी, पटमंजरी रागिनियाँ व कुछ अन्य चित्र सम्मिलित हैं।

दीपक राग को रात्रि के समय अपनी प्रियतमा के साथ एक कक्ष में बैठे हुए चित्रित किया गया है जो चार दीपकों की ज्योति से पूर्ण प्रकाशवान है। जिनमें से दो दीपकों के आधार भाग-नूतन ढंग से अलंकृत मानव आकृतियों के रूप में चित्रित किए गए हैं। आकाश असंख्य तारों से झिलमिल है, चंद्रमा का रंग पीला होता हुआ दिखाया गया है, जो इस बात का सूचक है कि इस युगल को एक साथ बैठे कई घंटे व्यतीत हो चुके हैं।

इस चित्र में हम देख सकते हैं कि महल के गुंबद के ऊपर के कलश पर बाहर की ओर आती हुई एक पट्टी है जिस पर केवल दीपक राग लिखा हुआ है। इससे चित्र रचना की प्रक्रिया की सूचना मिलती है कि प्राय: चित्र पूर्ण करके ही सुलेखक को दिया जाता था। इस संदर्भ में कविता कभी लिखी नहीं गई और शीर्षक कलाकार के लिए संकेत होता था कि उसे क्या चित्रित करना है।

अश्विन, बारहमासा, बूँदी, सत्रहवीं शताब्दी, छत्रपति शिवाजी महाराज वास्तु संग्रहालय, मुंबई

बारहमासा बूँदी चित्रकला का लोकप्रिय विषय है। जैसा कि पहले भी उल्लेख हुआ है कि यह बारह महीनों का वातावरणीय विवरण है जो केशवदास की पुस्तक *कविप्रिया* के दसवें अध्याय का भाग है, जिसे ओरछा की गणिका राय परबीन के लिए लिखा गया था।

कोटा चित्रकला शैली

बूँदी की कुशल पारंपरिक चित्रकला ने राजस्थानी शैली की एक बहुत उत्कृष्ट शैली, कोटा को उदित किया। यह शैली शिकार के दृश्यों को चित्रित करने में उत्कृष्ट थी और पशुओं के शिकार के एक असाधारण उत्साह एवं जुनून को प्रकट करती थी।

बूँदी और कोटा 1625 ई. तक एक ही राज्य थे। जहाँगीर ने बूँदी साम्राज्य को विभाजित करके एक भाग राव रतन सिंह (बूँदी के भोज सिंह के पुत्र) के पुत्र मधु सिंह को पुरस्कारस्वरूप दिया, जिसने दक्कन में जहाँगीर के पुत्र (राजकुमार) शहज़ादे खुर्रम (शाहजहाँ) के विद्रोह के खिलाफ़ वीरता का परिचय दिया था।

कोटा के महाराजा राम सिंह प्रथम, मुकुंदगढ़ में शेरों का शिकार करते हुए, 1695, कोलघी गैलरी, लंदन

बूँदी से अलग होने पर, जगत सिंह (1658–83) के शासन काल में 1660 में कोटा में अपनी अलग शैली की शुरुआत हुई। आरंभिक काल में बूँदी और कोटा शैली में अंतर नहीं किया जा सका, क्योंकि कुछ दशकों तक कोटा के चित्रकारों ने बूँदी की कला को ही गृहीत किया हुआ था। कुछ संरचना पूर्णतया बूँदी चित्रों से ही ली गई थीं। परंतु मानव कृति और वास्तुकला में इस प्रवृत्ति की गैर अनुरूपता की अतिशयोक्ति दिखाई देती है। कोटा चित्रकला शैली की प्रवृत्ति ने आने वाले दशकों में आश्चर्यजनक ढंग से अपनी विशिष्ट पहचान बनाई।

राम सिंह प्रथम (1686–1708) के समय तक कलाकारों ने पूर्ण मनोभाव से अपने विषयों की विविधता की सूची का स्तर बढ़ाया। ऐसा प्रतीत होता है कि कोटा के कलाकारों ने सर्वप्रथम वन दृश्य चित्रों को अपनी रचनाओं के वास्तविक विषय के रूप में चित्रित किया। उमेद सिंह (1770–1819) 10 वर्ष की आयु में राज सिंहासन पर बैठे, किंतु उनके शक्तिशाली राज्याधिकारी ज़ालिम सिंह, युवा राजा को खुश करने के लिए शिकार की व्यवस्था करते थे, जबकि वे राज्य के कार्यों को नियंत्रित करते थे। इस प्रकार उमेद सिंह ने कम समय में स्वयं को वन्य जीवों और जुआ खेलने में व्यस्त कर लिया और अपना अधिकांश समय शिकार में ही व्यतीत किया। समकालीन चित्र उनके पराक्रम का कीर्तिमान प्रस्तुत करते हैं। इस समय के कोटा चित्र शतरंज के जुनून को दर्शाते हैं जो एक सामाजिक प्रथा बन गया था, जिसे खेलने के लिए दरबार की स्त्रियाँ भी सम्मिलित होती थीं।

कोटा चित्र विशिष्ट रूप से सहज हैं, इसमें सुलेखन के निष्पादन और मुख्यत: दोहरे नयनपट में छाया अंकित करने पर बल दिया जाता था। कोटा कलाकारों ने पशुओं एवं युद्ध के प्रतिपादन में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया।

बीकानेर चित्रकला शैली

राव बीका राठौर ने 1488 में, राजस्थान राज्य में सबसे अधिक उन्नत राज्य बीकानेर की स्थापना की। उसके शासन काल में अनूप सिंह (1669–98) ने एक पुस्तकालय स्थापित किया जो पांडुलिपियों एवं चित्रकला का कोष बना। लंबे अंतराल तक मुगलों की संगति के परिणामस्वरूप बीकानेर में एक विशेष चित्रकला की भाषा का विकास हुआ जो मुगल शैली के लालित्य और रंग पट्टिका से प्रभावित था।

© NCERT not to be republished

शिलालेख साक्ष्यों के अनुसार मुगल शिल्प के मुख्य कलाकार सत्रहवीं शताब्दी में बीकानेर आए और वहाँ काम किया। करण सिंह ने उस्ताद अली रज़ा, जो दिल्ली का मुख्य कलाकार था, को नियुक्त किया। उसके आरंभिक कार्य बीकानेर शैली की शुरुआत का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो लगभग 1650 के समय के हो सकते हैं।

अनूप सिंह के शासन काल में रुकनुद्दीन (जिसके पूर्वज मुगल दरबार से आए थे) मुख्य कलाकार था, जिसकी शैली में देशज मुहावरों के साथ दक्षिणी या दक्कनी और मुगल परंपरा का मिश्रण था। उसने महत्वपूर्ण ग्रंथों, जैसे— *रामायण*, *रसिकप्रिया* और *दुर्गा सप्तशती* को चित्रित किया है। इब्राहिम, नाथू, साहिबदीन और ईसा आदि उसकी चित्रशाला के जाने-माने कलाकार थे।

बीकानेर में चित्रशाला बनाने की प्रथा प्रचलित थी जिन्हें मंडी कहा जाता था। जहाँ कलाकारों का समूह मुख्य चित्रकार के निर्देशन में चित्र रचना करते थे। शिलालेखों से ये सूचना प्राप्त कर सकते हैं कि रुकनुद्दीन, इब्राहिम और नाथू इनमें से कुछ व्यावसायिक चित्रशालाओं को संभालते थे। कुछ मंडियाँ अनूप सिंह के शासन काल में अस्तित्व में थीं। चित्र पूर्ण होने पर, दरबार के अभिलेखविद् मुख्य

गोवर्धन पर्वत को उठाते हुए कृष्ण, शहादीन द्वारा चित्रित, बीकानेर, 1690, ब्रिटिश संग्रहालय, लंदन

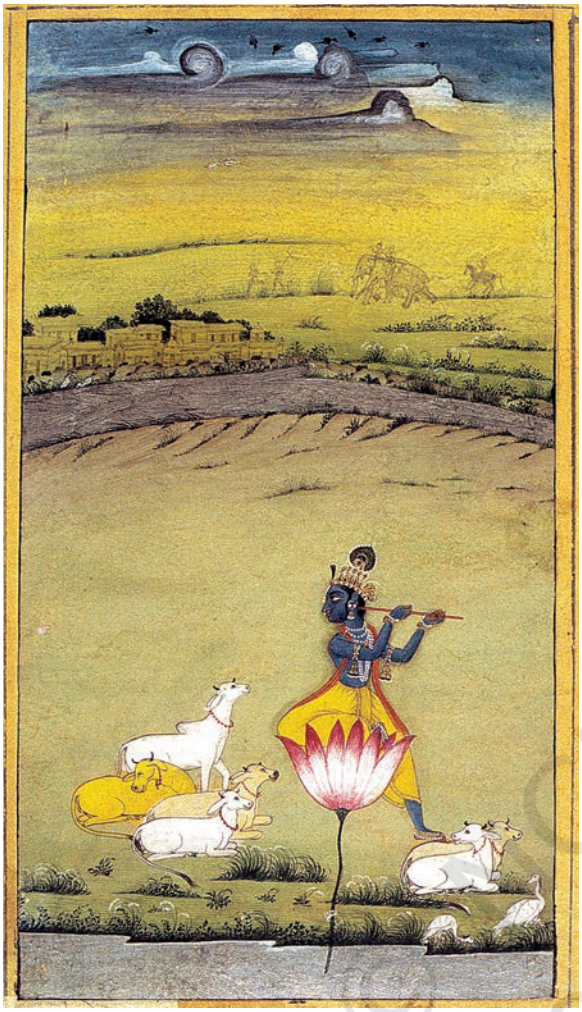

गायों से घिरे कृष्ण बाँसुरी बजाते हुए, बीकानेर, 1777, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

कलाकार का नाम और दिनांक चित्र के पीछे लिखते थे। इस अभ्यास के परिणामस्वरूप मुख्य कलाकार का नाम उसके शिष्यों के कार्यों पर अंकित किया जाता था जो अपने गुरु जैसी शैली में चित्र नहीं बना सकते थे। जबकि इन प्रविष्टियों से स्पष्ट होता है कि मुख्य कलाकार विशेष अवसर पर चित्रों को अंतिम रूप देते थे। इसके लिए 'गुदराई' शब्द प्रयोग किया जाता था, जिसका मतलब था 'ऊपर उठाना।' नवीन चित्रों के निर्माण की गतिविधियों के अतिरिक्त, चित्रों की मरम्मत या सुधार तथा पुराने चित्रों को बनवाने का कार्य भी चित्रशाला को सौंपा जाता था।

बीकानेर शैली के कलाकार के छवि चित्रणों की प्रथा अद्वितीय है और उनमें से बहुत-से चित्रण ऐसे हैं जिनमें उनकी वंशावली की जानकारी भी सम्मिलित है। उन्हें उस्तास या उस्ताद कहते हैं। रुकनुद्दीन ने कोमल रंगों की तान से अति सुंदर चित्र बनाए। इब्राहिम के काम में धुँधले स्वप्नक जैसा गुण है। उनकी मानवकृतियों में चेहरे सुंदरता के साथ सुडौल हैं। उनकी चित्रशाला बहुत उन्नत प्रतीत होती है। उनका नाम विभिन्न चित्रण संग्रहों में आता है, जैसे— बारहमासा, रागमाला और रसिकप्रिया

बही के हिसाब-किताब, राजसी अभिलेख, दिन-प्रतिदिन की दैनंदिनी और कई शिलालेखों ने बीकानेर चित्रों को सर्वश्रेष्ठ-दस्तावेज़ों वाली चित्रकला शैली बना दिया। मारवाड़ी और कभी-कभी फ़ारसी अभिलेखों से कलाकारों के नाम, दिनांक, कुछ स्थानों पर यहाँ तक कि निर्माण स्थल, अवसर जिसके लिए चित्र बनाए गए थे आदि का भी पता चलता है।

किशनगढ़ चित्रकला शैली

व्यापक रूप से राजस्थान की सभी लघु चित्रकारियों में सबसे अधिक किशनगढ़ शैली के चित्र, अपनी उत्कृष्ट बनावट और धनुषाकार भौहों से बने चेहरे, कमल की पंखुड़ी के समान हलकी गुलाबी रंग की आँखें, झुकी पलकें, एक सुगठित नुकीली नाक और पतले होंठ जैसी शैलीकृत विशेषताओं से अपनी विशिष्ट पहचान बनाते हैं।

जोधपुर के राजा के पुत्रों में से एक पुत्र, किशन सिंह ने 1609 ई. में किशनगढ़ राज्य की स्थापना की थी। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में मानसिंह (1658–1706) के संरक्षण में कलाकार पहले से ही किशनगढ़ दरबार में काम कर रहे थे।

एक मंडप में कृष्ण और राधा, निहाल चंद, किशनगढ़, 1750, इलाहाबाद संग्रहालय

राज सिंह (1706–48) के शासन काल के दौरान अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में राज्य में एक विशिष्ट शैली विकसित हुई, जिसमें लंबी मानवाकृति, प्रचुरता से हरे रंग का प्रयोग और मनोरम दृश्य चित्रों का चित्रण हुआ। वल्लभाचार्य के पुष्टि मार्ग में राज सिंह के आरंभिक प्रयास से कृष्ण लीला किशनगढ़ शासकों का पसंदीदा विषय बन गया और उनकी दरबारी कला के एक प्रमुख भाग का प्रतिनिधित्व किया।

निहालचंद, सावंत सिंह का सबसे मशहूर और उत्कृष्ट कलाकार था। निहालचंद ने सावंत सिंह के लिए 1735 – 57 तक कार्य किया और सावंत सिंह की कविताओं पर चित्र संयोजित किए जो मुख्यत: दिव्य युगल राधा-कृष्ण पर बने थे। इन्हें दरबारी परिवेश में प्राय: विशाल मनोरम परिदृश्य में छोटी आकृतियों के रूप में बारीकी से चित्रित किया गया था। किशनगढ़ कलाकारों ने सुस्पष्ट रंगों द्वारा दृश्यों के चित्रण को उजागर किया।

जोधपुर चित्रकला शैली

सोलहवीं शताब्दी में मुगलों की राजनैतिक उपस्थिति से उनकी सौंदर्यात्मक दृष्टि का प्रभाव छवि चित्रण एवं दरबारी दृश्य चित्रों आदि पर नज़र आता है। हालाँकि, स्वदेशी लोक शैली संस्कृति इतनी व्यापक और गहरी पैठ लिए हुए थी कि उसका प्रभाव हावी नहीं होने दिया और अधिकांश संग्रहित चित्रों में प्रचलित रही। रागमाला पाली में चित्रित एक आरंभिक चित्र संग्रह है, जो कलाकार वीरजी द्वारा 1623 में चित्रित किया गया था।

इन चित्रों की रचना की शुरुआत सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में महाराजा जसवंत सिंह (1638–78) के काल में हुई थी। छवि चित्रण एवं दरबारी जीवन को प्रदर्शित करने वाले दस्तावेज़ी चित्रों की प्रथा इन्हीं के संरक्षण में, लगभग

© NCERT not to be republished

ढोला और मारू,
जोधपुर, 1810, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

1640 में शुरू हुई थी और उसका उन्नीसवीं शताब्दी में छायाचित्रों के आगमन तक एकमात्र विशिष्ट एकाधिकार रहा। तब यह चित्रों के अभिलेख वृत्तांत का पर्याय बन गया। जसवंत सिंह के अनेक छवि चित्र मिलते हैं। श्रीनाथजी के वल्लभ पंथ की ओर व्यक्तिगत झुकाव होने के कारण उन्होंने कृष्ण से संबंधित विषयों को *भागवत पुराण* के साथ विशिष्ट रूप में संरक्षित किया।

उनका उत्तराधिकारी अजित सिंह (1679–1724), औरंगज़ेब के साथ 25 वर्षों के युद्ध के बाद राजा बना जो कि प्रसिद्ध योद्धा वीर दुर्गादास राठौर द्वारा लड़ा गया था। अजीत सिंह ने सफलतापूर्वक मेवाड़ को पुन: अपने अधिकार में किया, अजीत सिंह के काल में दुर्गादास और उसकी बहादुरी को कविताओं और दरबारी चित्रकला में प्रसिद्धि प्राप्त हुई। दुर्गादास के घुड़सवारी के छवि चित्र बहुत प्रसिद्ध हुए।

जोधपुर चित्रकला के अंतिम चरण की रचनात्मकता मानसिंह (1803–43) के शासन काल से मेल खाती है। उसके समय के महत्वपूर्ण चित्र संग्रह, *रामायण* (1804), *ढोला-मारू*, *पंचतंत्र* (1804) और *शिवपुराण* में हैं। *रामायण* चित्र बहुत रुचिकर हैं, क्योंकि कलाकार ने अपनी समझ के अनुसार जोधपुर को राम की अयोध्या के रूप में प्रस्तुत किया है। इसीलिए बाज़ार, गलियाँ, प्रवेशद्वार आदि उस समय के जोधपुर का आभास कराते हैं। वास्तव में, सभी चित्रकला शैलियों में स्थानीय वास्तुकला, पहनावा और सांस्कृतिक पहलू, कृष्ण, राम और अन्य कहानियों से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और चित्रों में प्रदर्शित हुए हैं।

मानसिंह, नाथ संप्रदाय के अनुयायी थे और उनकी चित्रकला में नाथ गुरुओं के साथ चित्र मिलते हैं। *नाथ चरित* (1824) के एक समुच्चय को भी चित्रित किया गया था।

उन्नीसवीं शताब्दी तक, मेवाड़ चित्रों के पीछे लिखे वर्णन में चित्र के विषय में बहुत अधिक जानकारी नहीं मिलती। यदा-कदा तिथियाँ अंकित हुई हैं और बहुत कम कलाकारों के नाम और चित्रों के स्थान के बारे में जानकारी मिलती है।

जयपुर चित्रकला शैली

जयपुर चित्रकला शैली की उत्पत्ति उसकी पूर्व राजधानी आमेर में हुई थी, जो मुगल राजधानियों— आगरा और दिल्ली से सभी बड़े राजपूत राज्यों से निकटतम थी। शुरुआती समय से ही जयपुर के शासकों ने मुगल सम्राटों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखे, जिन्होंने आमेर में कलात्मकता को बहुत प्रभावित किया। राजा भारमल (1548–75) ने अपनी बेटी की शादी अकबर से की। उनके पुत्र भगवंत दास (1575–92) अकबर के घनिष्ठ मित्र थे और उनके बेटे मानसिंह, अकबर के सबसे विश्वसनीय सैन्य प्रमुख थे।

एक प्रभावशाली शासक सवाई जय सिंह (1699–1743) ने 1727 में अपने नाम पर एक नई राजधानी जयपुर की स्थापना की और आमेर से स्थानांतरित हो गए। उनके शासन काल में जयपुर चित्रकला शैली संपन्न हुई और एक नामांकित स्वतंत्र शैली के रूप में उभरी। दरबारी दस्तावेज़ों से पता चलता है कि कुछ मुगल कलाकारों को अपनी चित्रशाला का हिस्सा बनाने के लिए दिल्ली से लाया गया। वे वैष्णव संप्रदाय के प्रति आकर्षित हुए और राधा-कृष्ण विषय पर अनेक चित्रों का निर्माण करवाया। *रसिकप्रिया*, *गीत-गोविंद*, *बारहमासा* और *रागमाला* पर आधारित चित्रों के संग्रह, उनके शासन काल के दौरान कलाकारों ने बनाए, इनमें

गोधुली का समय, जयपुर, 1780
राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

आश्चर्यजनक ढंग से नायक की आकृति शासक से मिलती-जुलती है। छवि चित्रण भी उनके समय में बहुत लोकप्रिय था और एक निपुण चित्रकार, साहिबराम उनकी चित्रशाला का हिस्सा था। मुहम्मद शाह एक और अन्य कलाकार था।

सवाई इश्वरी सिंह (1743–50) ने भी इसी तरह कला का संरक्षण किया। धार्मिक एवं साहित्यिक ग्रंथों के अतिरिक्त उन्होंने अपने अवकाश के क्षणों को भी चित्रित किया, जैसे कि हाथी की सवारी, सुअर एवं बाघ का शिकार, हाथी के झगड़े आदि। सवाई माधो सिंह (1750–67) भी अपने दरबारी जीवन की घटनाओं को अंकित कराने की ओर आकर्षित हुए।

अठारहवीं शताब्दी वह समय था जब सवाई प्रताप सिंह (1779–1803) की इच्छानुसार मुगल प्रभाव कम हुआ और जयपुर शैली पुनर्निर्मित सौंदर्यशास्त्र के साथ, मुगल और स्वदेशी शैलीगत विशेषताओं का मिश्रण बनी। यह जयपुर के लिए दूसरा संपन्न काल था और प्रताप सिंह ने लगभग 50 कलाकारों को नियुक्त किया था। वे एक विद्वान, कवि, बहुसर्जक लेखक और कृष्ण के उत्साही अनुयायी थे। उनके समय में शाही छवि चित्रण और दरबारी शान-शौकत को प्रदर्शित करने वाले चित्रों के अलावा साहित्यिक और धार्मिक विषयों, जैसे— *गीत गोविंद*, रागमाला, *भागवत पुराण* आदि विषयों को नये सिरे से प्रोत्साहन मिला।

कई स्थानों पर छापकर भी अनेक चित्रों की प्रतियाँ बनवाई गईं। उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में सोने का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ। जयपुर में बड़े आकार की आकृतियाँ और जीवंत-आकार के छवि चित्रों का निर्माण किया गया।

अभ्यास

1. आपके विचार में किस प्रकार से पश्चिमी भारतीय पांडुलिपि चित्रकला परंपरा ने राजस्थान लघु चित्रकला परंपराओं के विकास को दिशा निर्देश दिए?
2. राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों का वर्णन करें और उनकी विशेषताओं को उदाहरण सहित लिखें।
3. रागमाला क्या है? राजस्थान की विभिन्न शैलियों से रागमाला चित्रों के उदाहरण दीजिए।
4. एक मानचित्र बनाएँ और उसमें राजस्थानी लघु चित्रकारी की सभी शैलियों को दर्शाएँ।
5. कौन-से ग्रंथ लघु चित्रकारी के लिए सामग्री और विषय प्रदान करते हैं? उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।

© NCERT not to be republished

भागवत पुराण

मध्ययुगीन काल में, *भागवत पुराण* के भगवान कृष्ण के जीवन और उनकी लीलाओं के विभिन्न दृश्यों को दर्शाते चित्र कलाकारों के लोकप्रिय विषय रहे हैं। राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में संग्रहित यह चित्र कृष्ण द्वारा दानव शक्तासुर के वध को दर्शाता है (1680–90)।

भागवत पुराण का यह पृष्ठ मालवा शैली का एक विशिष्ट उदाहरण है जिसमें सतह को बड़ी सावधानीपूर्वक विभाजित किया गया है और प्रत्येक भाग में एक घटना के अलग-अलग दृश्य अंकित किए गए हैं। इनमें से एक में कृष्ण जन्म के बाद नंद और यशोदा के घर आयोजन एवं उत्सव का दृश्य अंकित है। पुरुष और स्त्रियाँ नाच-गा रहे हैं (निचले बायें और ऊपरी मध्य भाग में)। आनंदित अभिभावक नंद एवं धर्मार्थ की यशोदा गतिविधियों में व्यस्त हैं और ब्राह्मणों और शुभचिंतकों को (मध्य बायें और एकदम दायें) गाय व बछड़े का दान देते हुए दर्शाए गए हैं; बहुत-सा स्वादिष्ट भोजन तैयार किया जा रहा है (मध्य भाग में)। स्त्रियाँ बाल कृष्ण की नज़र उतार रही हैं (ऊपर बायीं ओर) और कथा का अंत कृष्ण द्वारा दानव शक्तासुर को अपने पैरों द्वारा मारकर मुक्ति दिलाने से होता है।

मारू रागिनी

मेवाड़ के रागमाला चित्रों का संग्रह विशेष रूप से बहुत महत्वपूर्ण है। इनमें से एक चित्रण में इसके कलाकार, संरक्षक, स्थान और चित्र की दिनांक के बारे में निर्णायक दस्तावेज़ी साक्ष्य दिए गए हैं। मारू रागिनी इसी संग्रह में से एक है जो राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली मे संग्रहित है। चित्र पर पाए गए अभिलेख का प्रारंभिक हिस्सा, मारू रागिनी का प्रतिनिधित्व करते हुए, मारू को राग श्री की रागिनी के रूप में वर्गीकृत करता है और उनकी शारीरिक सुंदरता और उनके प्रिय पर इसके प्रभाव का वर्णन करता है। इसका अगला भाग काफी मनोरंजक लगता है— "संवत 1685 वर्षे असो वद 9 राणा श्री जगत सिंह राजेन उदयपुर मधे लिखितम चितारा साहिबदीन बचन हारा ने राम राम।"

संवत 1685 वास्तव में 1628 ई. है और साहिबदीन को 'चितारा' कहा गया है, जिसका अर्थ है, 'वह जो चित्रित करता है' और चित्रण कार्य को 'लिखितम' कहा गया है, जिसका अनुवाद है, 'लिखा हुआ' क्योंकि कलाकार का लक्ष्य चित्र में लिखे पद्य के समतुल्य चित्र प्रस्तुत करना था।

मारू को राग सहचरी के रूप में जाना जाता है, क्योंकि क्षेत्र के लोकगीतों और मौखिक परंपरा में डोला मारू गीतकथा की लोकप्रियता गहरी पैठ बनाए हुए है। यह डोला नाम के एक राजकुमार और राजकुमारी मारू की कहानी है, जिन्हें एक साथ होने के लिए कई संघर्षों से गुज़रना पड़ा। कहानी का आधार परीक्षण और पीड़ा, अमंगलकारी रिश्तेदार, युद्ध, दुखद दुर्घटनाएँ हैं। चित्र में उन्हें ऊँट पर बैठकर भागते हुए दर्शाया गया है।

not to be republished

राजा अनिरुद्ध सिंह हाड़ा

अनिरुद्ध सिंह (1682–1702) भाऊ सिंह का उत्तराधिकारी था। रोचक दस्तावेज़ साक्ष्य के साथ इनके समय की चित्रकला के कुछ उल्लेखनीय अवशेष बचे हैं। 1680 ई. में कलाकार तुलची राम द्वारा चित्रित अश्वारोही अनिरुद्ध का चित्र बहुत चर्चित है। यह एक कलाकार की गति की धारणा और एक घोड़े की गति का प्रतीक है जिसे अग्रभूमि के प्रतिपादन की पूरी तरह उपेक्षा करके दर्शाया गया है। घोड़े को हवा में इतना तेज़ दौड़ते हुए दिखाया गया है कि ज़मीन दिखाई नहीं देती। इस प्रकार के चित्र आज भी कथाओं में चित्रित होते हैं। चित्र के पीछे तुलची राम और राजकुमार (कुँवर) अनिरूद्ध सिंह के नाम अंकित हैं, लेकिन सामने, राव छत्रसाल के छोटे पुत्र, भरन सिंह का नाम अंकित है। कुछ विद्वानों का मानना है कि यह चित्र भरत सिंह का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि ज़्यादातर लोगों की राय है कि यह सिंहासन पर बैठने से पहले युवा अनिरुद्ध सिंह को दर्शाता है। यह चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में संग्रहित है।

चौगन खेलती राजकुमारियाँ

इस चित्रकला में कलाकार दाना द्वारा राजकुमारी को अपनी साथियों के साथ चौगन (पोलो) खेलते हुए दर्शाया गया है जो कि मानसिंह के शासन काल के जोधपुर चित्रकला का प्रतिनिधित्व करती है। संभावना है कि यह मुख्य दरबार से हो भी सकती है और नहीं भी, क्योंकि कई शैलियों का शैलीगत प्रभाव इसमें प्रकट होता है, जैसे— स्त्रियों को चित्रित करने में मुगल प्रभाव दिखता है, घोड़े के चित्रण में दक्कन का प्रभाव, चेहरे की विशेषताओं के चित्रण में बूँदी और किशनगढ़ और हरे रंग की सपाट सतह पृष्ठभूमि के लिए स्वदेशी वरीयता का संकेत मिलता है। चित्र के ऊपरी हिस्से में एक पंक्ति लिखी है जिसका अनुवाद इस प्रकार है— "घोड़े पर सवार युवतियों का खेल।" यह चित्रकला 1810 में बनाई गई थी और राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में संग्रहित है।

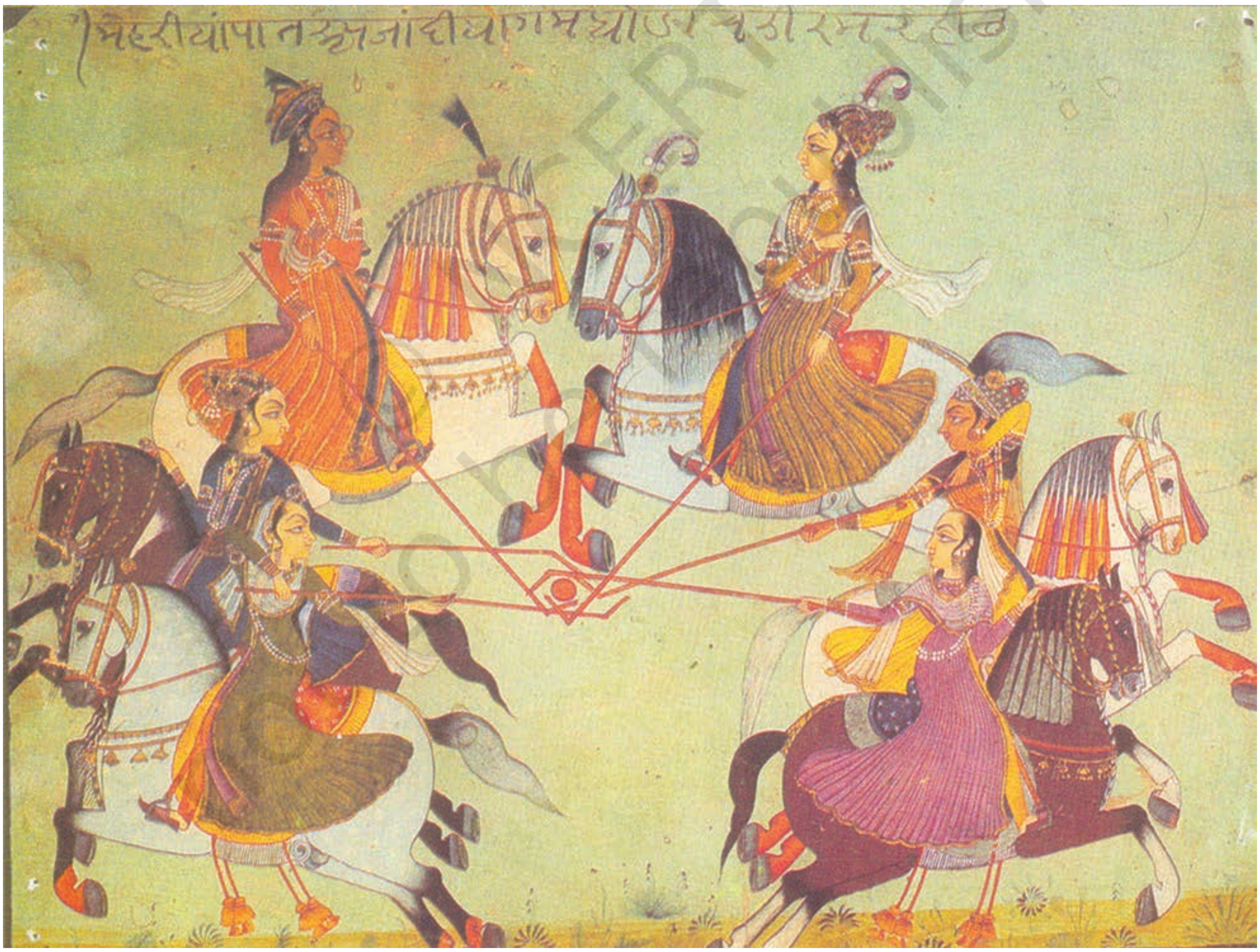

Reprint 2026-27

झूले पर कृष्ण एवं उदास राधा

यह चित्रकला *रसिकप्रिया* को दर्शाती है, इसमें कलाकार का नाम और तारीख अंकित है। 1683 ई. में कलाकार नूरूद्दीन द्वारा इसे चित्रित किया गया, जिन्होंने बीकानेर दरबार में 1674–1698 तक कार्य किया। यह चित्र वास्तुकला और दृश्य चित्रण के तत्वों के न्यूनतम और सांकेतिक प्रतिनिधित्व के साथ एक शुद्ध और सरल रचना प्रस्तुत करता है। चित्रकला को दो भागों में विभाजित करने के लिए नूरूद्दीन ने चित्र के मध्य में हलके तरंगित टीले के रूप को सरलता से नियोजित किया है। यह नियोजन एक शहरी विन्यास को पेड़ से लदे ग्रामीण क्षेत्र में बदल देता है या इसके विपरीत ग्रामीण क्षेत्र को शहरी विन्यास में बदल देता है। चित्र के ऊपरी हिस्से में चित्रित वास्तुशिल्प मंडल उस स्थान को महल के आंतरिक हिस्से के रूप में दर्शाता है, जबकि हरी घास के मैदान पर कुछ वृक्ष बाहरी और देहाती परिदृश्य को प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार घर के अंदर और बाहर होने वाली गतिविधियों को कोई भी समझ सकता है।

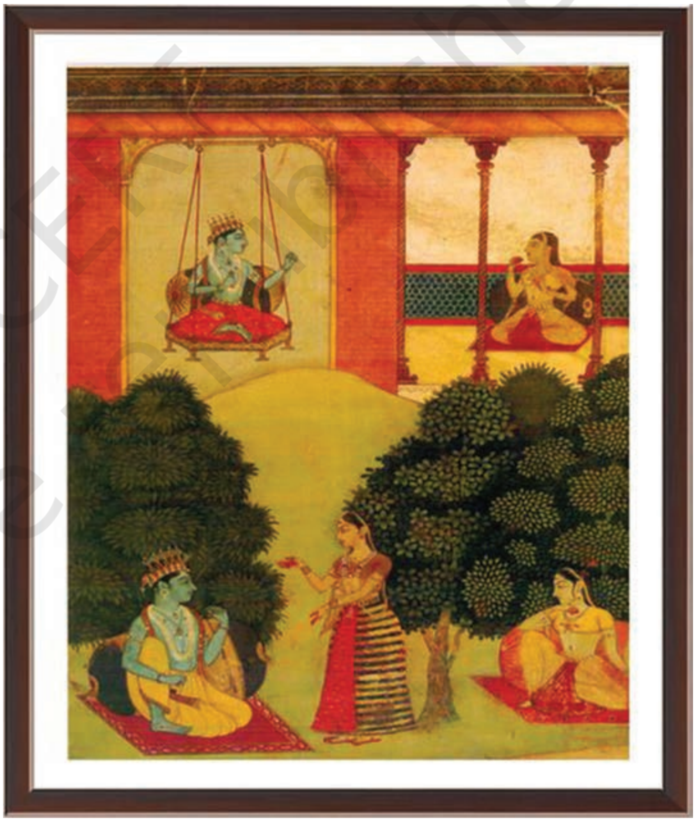

चित्र के ऊपरी हिस्से में कृष्ण एक गोपी के आवास में झूले पर बैठे उसके साथ आनंद ले रहे हैं। उनके विनोद स्थल के बारे में जानने पर रूठी हुई राधा, दु:खी होकर, ग्रामीण बस्ती से दूर एक वृक्ष के नीचे अकेली बैठ जाती है। राधा के दु:ख के बारे में जानकार कृष्ण व्याकुल हो उठते हैं और उनके पीछे-पीछे आते हैं, परंतु संधि नहीं होती है। इसी बीच राधा की सखी को ये प्रकरण पता चलता है और वह संदेशवाहक और शांतिदूत की भूमिका निभाती है। वह कृष्ण के पास आती है और उन्हें राधा के दु:ख और दुर्दशा के बारे में बताती है और उनसे राधा को मनाने के लिए प्रार्थना करती है। यह चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में संग्रहित है।

not to be republished © NCERT

बनी ठनी

सावंत सिंह ने ब्रजभाषा में लेखक नागरी दास के नाम से कृष्ण और राधा पर भक्तिपूर्ण कविता की रचना की। उनके बारे में कहा जाता है कि वे एक युवा गायिका के प्रेम में दीवाने थे जिसे 'बनी ठनी' का नाम दिया गया था, उसका सौंदर्य मोहित करने वाला था, क्योंकि उसकी सुंदरता और शिष्टता अद्वितीय थी। वह राजसिंह की पत्नी की परिचारिका थी और एक अत्यंत प्रतिभाशाली कवयित्री, गायिका और नर्तकी थी। बनी ठनी सावंत सिंह की कविता की प्रेरणा स्रोत थी, जिन्होंने राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंग पर कविता लिखी। उन्होंने एक कविता 'बिहारी जस चंदिका' में बनी ठनी के बारे में लिखा है, जो निहालचंद के चित्र बनी ठनी का आधार बनी, इस प्रकार कविता एवं चित्र का सम्मिश्रण प्रदर्शित होता है। स्वजनों की हत्या से परेशान, सावंत सिंह ने अंततः 1757 में सिंहासन त्याग दिया और बनी ठनी के साथ वृंदावन चले गए।

किशनगढ़ के अतिरंजित चेहरे का प्रकार, जो किशनगढ़ शैली की विशिष्ट और प्रमुख शैलीगत पहचान बना, माना जाता है कि यह बनी ठनी के आकर्षक तेज चेहरे की विशेषताओं से लिया गया है।

निहालचंद को किशनगढ़ की अति सुंदर एवं विशिष्ट मुख्य कृति का रूप बदलने का श्रेय दिया जाता है जो सांवत सिंह और बनी ठनी की आकृतियों में राधा और कृष्ण के रूप में नयनाभिराम दृश्यों में शानदार रंगों से चित्रित हुआ।

राधा के रूप में बनी ठनी चित्र में राधा का चेहरा उसकी घुमावदार आँखों, भौंहों के अतिरंजित मेहराव, तीक्ष्ण नाक, गालों पर सर्पित लहरदार केश, पतले होंठ और स्पष्ट ठोड़ी अद्वितीय है। यह विशेष चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में संग्रहित है।

© NCERT not to be republished

चित्रकूट में राम और उनके परिवार का मिलन

गुमान द्वारा चित्रित *रामायण* 1740–50 के मध्य चित्र कथा की निरंतरता को चित्रित करने का उत्कृष्ट उदाहरण है। साधारण-सी दिखने वाली झोपड़ी (पर्णकुटी), जिसे आधारभूत सामग्री, जैसे— मिट्टी, लकड़ी और हरे पत्तों से पहाड़ी तलहटी के जंगल में, वृक्षों से घिरे ग्रामीण दृश्य के रूप में स्थापित किया गया है, जहाँ *रामायण* का यह प्रसंग घटित हुआ था। कलाकार गुमान ने बायें से कथा शुरू करते हुए इसे दायीं ओर समाप्त किया है।

रामायण के अनुसार, जब राम को वनवास भेजा गया तब भरत वहाँ उपस्थित नहीं थे। दशरथ के निधन के पश्चात्, दु:ख से उबरने और पश्चाताप में डूबे भरत अपनी तीनों माताओं, ऋषि विशिष्ठ और दरबारियों के साथ, राम को मनाने के लिए उनसे मिलने जाते हैं।

चित्रकला में कहानी तीन माताओं के साथ शुरू होती है जो चित्रकूट में राजकुमारों की पत्नियों के साथ झोपड़ीनुमा आवासों की ओर बढ़ती हैं। माताओं को देखते ही राम, लक्ष्मण और सीता श्रद्धा में झुक जाते हैं। शोकग्रस्त कौशल्या

अपने पुत्र राम के पास पहुँचती हैं और उन्हें अपनी बाँहों में ले लेती हैं। राम, तब अन्य दो माताओं सुमित्रा और कैकेयी को सम्माानपूर्वक नमस्कार करते हैं। फिर वे कर्तव्यनिष्ठापूर्वक ऋषियों को स्वीकारते हैं और नीचे बैठकर उनसे बात करते हैं। जब ऋषि दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनाते हैं तो राम वेदना में एकाएक गिर जाते हैं। सुमंत को ऋषियों के पीछे श्रद्धापूर्वक खड़े हुए दिखाया गया है। तीनों माताओं और लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की पत्नियों को सीता से बात करते हुए दर्शाया गया है। दायीं तरफ चित्र की चौखट से बाहर निकलने वाले समूह के साथ कथा की समाप्ति होती है। चित्र में कथा के हर पात्र को अंकित किया गया है। यह चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में संग्रहित है।

© NCERT
not to be republished